Jai Maa Saraswati Gyandayini
An International Multidisciplinary e-Journal
(Peer - reviewed, Open Accessed & Indexed)
Web: www.jmsjournals.in; Email: jmsjournals.in@gmail.com
Vol.5, Issue-I, July 2019
ISSN: 2454-8367
Impact Factor: 4.032 (IIJIF)
e-ISJN: A4372-3118

उर्वशी में अभिव्यक्त प्रकृति के विविध स्वरूप

डॉ0 राजमुनि
एसोसियेट प्रोफेसर
हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, महात्मा गॉधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

सारांश

मानव जीवन में प्रकृति का विशेष महत्व है या हम यू कहें कि जब से सृष्टि का निर्माण हुआ है तब से लेकर आज तक प्रकृति से अलग जीवन की कल्पना करना असम्भव है। प्रकृति का सम्बन्ध सजीव एवं निर्जीव दोनों प्रकार की वस्तुओं से है। दिनकर ने भी उर्वशी में इस बात पर विशेष बल दिया है कि मानव का उद्भव एवं विकास प्रकृति के बिना नहीं हो सकता है। मानव का निर्माण प्रकृति के विभिन्न तत्वों से मिलकर हुआ है। ऐसे में मानव एवं प्रकृति के बीच अनुराग न हो हो ऐसा नहीं हो सकता। संसार के समस्त जीव प्रकृति में जन्म लेते हैं, बड़े होते हैं एवं अन्त में प्रकृति की शीतल गोद में ही चिर विश्राम पाते हैं। प्रकृति मानव को इतना कुछ दे जाती है जिसका कर्ज हम जीवन पर्यन्त भी नहीं चुका सकते हैं। पेड़—पौधे, नदी, पहाड़, झरना, वायु, अग्नि, आकश, पृथ्वी, जल, चाँद, तारे, सूर्य एवं सागर आदि सभी प्रकृति के विभिन्न अंग हैं जो एक—दूसरे के पूरक हैं। इन सभी से मिलकर प्रकृति का निर्माण होता है। प्रकृति से ही मानव का निर्माण होता है। तभी तो दिनकर पुरूरवा के माध्यम से कहते हैं कि मनुष्य इतना मूर्ख है कि वह यह भी नहीं जानता कि उसका निर्माण प्रकृति से ही हुआ है अतः वह उससे अलग कैसे हो सकता है? —

मूढ़ मनुज यह भी न जानता,
तू ही स्वयं प्रकृति है?
फिर अपने से आप भाग कर,
कहाँ त्राण पायेगा?
सब है शून्य, कहीं कोई निश्चित आकार नहीं है,
क्षण—क्षण सब कुछ बदल रहा है परिवर्तन के क्रम में।[1]

मानव बनावटी सुख कितना भी अर्जित कर ले लेकिना उससे मानसिक शान्ति प्राप्त नहीं होती है। जब उसकी मानसिक शान्ति भंग होती है तो वह पुनः प्रकृति की शीतल छाया में आकर सुकून का अनुभव करता है। इससे स्पष्ट है कि साधारण मानव से लेकर कवि एवं मनीषी भी प्रकृति से अलग जीवन की कल्पना नहीं कर सकते। प्रकृति और मनुष्य का सदैव चोली—दामन का साथ रहा है। जब—जब मानव प्रकृति से दूर हो जाता है तब—तब उसकी बेचैनी एवं अशान्ति बढ़ जाती है।

मुख्य शब्द— प्रकृति, मूढ़, परिवर्तन, बूटे, जलीध, चन्द्रिका, हिंडोर, सोहर, हिम—स्नात, रश्मि, नगपति, आकाश, कुंज, मृग, उर्वशी, मणि, मुकुलित, विटप, विहगावलि, अन्तर्मन आदि।

दिनकर की उर्वशी में प्रकृति अपने अनेक रूपों में प्रकट होती है।

आलम्बन रूप में आकाश, चाँद, तारे, चाँदनी रात, बसन्त ऋतु, गन्ध मादन पर्वत का हरा–भरा परिवेश आदि को बहुत रमणीय रूप मे प्रस्तुत किया है। नीले आकाश में फैले हुए तारे ऐसे जान पड़ते हैं जैसे किसी ने नीले चीर पर बूटे टांक, दिये हों या असीम सागर में कदम–कदम पर ज्योति के द्वीप जल रहे हों–

''खुली नीलिमा पर विकीर्ण तारे यों दीप रहे हैं,
चमक रहे हों नील चीर पर बूटे ज्यों चाँदी के।
या प्रशान्त निस्सीम जलधि में जैसे चरण–चरण पर,
नील बारि को फोड़ ज्योति के द्वीप निकल आये हों।''[2]

इसमें दिनकर ने तारों में ज्योति के द्वीपों का आरोप करके अपनी मौलिक एवं अद्वितीय प्रतिभा का परिचय दिया है।

चाँदनी रात में पृथ्वी की निस्तब्धता इस प्रकार शोभा दे रही है जैसे चाँदनी के दर्पण में अपनी छवि को देखकर प्रकृति अपने–आप को ही भुला बैठी है–

''स्वच्छ कौमुदी में प्रशान्त जगती यों दमक रही है,
सत्य रूप तज कर जैसे हो समा गई दर्पण में।
शान्ति–शान्ति सब ओर मंजु, मानो चन्द्रिका मुकुर में,
प्रकृति देख अपनी शोभा, अपने को भूल गई हो।''[3]

कहना न होगा कि उर्वशी का प्रारम्भ ही प्राकृतिक शोभा के मंच से होता है। प्रथम अंक से ही कवि प्रकृति की अंगुली पकड़कर आगे बढ़ता जाता है। दिनकर की दृष्टि इतनी तीक्ष्ण है कि उससे प्रकृति का कोई कोना अछता नहीं रहता जहाँ वह न पहुँचे। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि जो कवि अपनी रचना का प्रारम्भ प्राकृतिक परिवेश से करता है उसमें आगे प्रकृति का कितना भव्य रूप दिखायी देगा।

पृथ्वी की प्राकृतिक सम्पदा एवं सौन्दर्य को देखकर पृथ्वी लोक ही नहीं बल्कि स्वर्ग की अप्सराएँ भी उसे प्राप्त करने के लिए यहाँ आती हैं। पृथ्वी पर आने के बाद वे प्रकृति के एक–एक अंग का जी भर उपभोग करना चाहती हैं। इससे स्पष्ट है कि ऐसा प्राकृतिक सौन्दर्य शायद स्वर्गलोक में भी सम्भव नहीं है। तभी तो आकाश से आने वाली परियाँ प्राकृतिक सुषमा को देखकर इतनी मद–मस्त हो जाती हैं कि वे उस सौन्दर्य में जी भर अवगाहन करना चाहती हैं। वे प्रकृति के सौन्दर्य के सागर में स्नान करके उसकी एक–एक गली का भ्रमण करने की इच्छा प्रकट करती हैं। इसीलिए वे एक साथ गाती हैं–

''फूलों की नाव बहाओं री, यह रात रुपहली आई।
फूटी सुध–सलिल की धारा,
डूबा नभ का कूल–किनारा,
सजल चाँदनी की सुमन्द लहरों में तैर नहाओ री!
x x x यह रात रुपहली आई।
मुदित चाँद की अलकें चूमो,
तारों की गलियों में घूमो,
झूलो गगन–हिंडोरे पर, किरणों के तार बढाओ री!
x x x यह रात रुपहली आई।''[4]

द्वितीय अंक में कंचुकी राजा के कहने पर ऑशीनरी को गन्धमादन पर्वत की प्राकृतिक शोभा के विषय में बताता है कि– इस पर्वत पर बहने वाली वायु स्वास्थ्य वर्धक है, जल मीठा एवं शीतल है। चारों ओर जलाशय कमलों से भरे हुए हैं, लम्बे–लम्बे चीड़ के पेड़ आकाश की ओर इस प्रकार गर्दन उठाये हैं जैसे एक पैर पर खड़े होकर तपस्या कर रहे हों–

''पवन स्वास्थ्यदायी, शीतल, सुस्वादु यहाँ का जल है,
झीलों, बस, जिधर देखिए, उत्पल–ही–उत्पल है।
लम्बे–लम्बे चीड़ ग्रीव अम्बर की ओर उठाए,
एक चरण पर खड़े तपस्वी से हैं ध्यान लगाए।''[5]

गन्धमादन पर्वत की प्रातःकालीन बेला की शोभा का वर्णन करते हुए उर्वशी पुरूरवा से कहती है कि पर्वतीय क्षेत्र में जाती हुए रात और उदित होते हुए सूर्य की शोभा देखते ही बनती है। सूर्य अपने लाल–लाल बाणों से मानो लाल शिखर को बेध रहा हो, हिम से नहाई हुए बल्हारी को देखो पुजारिन की भाँति पति को फूलों का हार पहना रही हैं। कुंजों में पैदा होने वाले छोटे–छोटे पौधों के जन्म पर जैसे विहगावलियाँ सोहर (जन्मोत्सव के गीत) गा रही हैं–

''चन्द्रमा चला, रजनी बीती, हो गया प्रातः,
पर्वत के नीचे से प्रकाश के आसन पर।
आ रहा सूर्य फेंकते बाण अपने लोहित,
बिंध गया ज्योति से, वह देखो, अरुणाभ शिखर।
हिम–स्नात, सिक्त बल्लरी–पुजारिन को देखो,
पति को फूलों का नया हार पहनाती है,
कुंजों में जनमा है कल कोई वृक्ष कहाँ
वन की प्रसन्न विहगावलि सोहर गाती हैं।''[6]

गन्धमादन पर्वत की प्रकृति सभी के मन को उद्दीप्त कर देती है। उस पर्वत का प्राकृतिक परिवेश अपने स्वाभाविक सौन्दर्य से सभी का मन मोह लेता है। चाहे प्रातःकालीन सौन्दर्य हो, संध्याकालीन या रात्रिकालीन सौन्दर्य। सभी की शोभा अनायास ही हृदय को अपनी ओर खींच लेती है। इसके अतिरिक्त रात्रिकालीन सौन्दर्य की छटा का तो कहना ही क्या? जिसे देखकर अप्सराओं का दिल झूमने पर मजबूर हो जाता है। इतना ही नहीं रम्भा जैसी अप्सरा जिसका हृदय मर्त्यलोक के प्राकृत सौन्दर्य को देखने के लिए तप्त हो रहा है। वह अपने हृदय की तपन को हरी घास पर पड़ी हुई ओस की बूँदों से शीतल करना चाहती है। वह चाहती है कि आज इन ओस की बूँदों में जीभर नहाऊँ–

''दूर–दूर तक फैल रही दूबों की हरियाली है,
बिछी हुई इस हरियाली पर शबनम की जाली है।
जी करता है, इन शीतल बूँदों में खूब नहाएँ।''[7]

रम्भा पृथ्वी के प्राकृतिक सौन्दर्य से बहुत प्रभावित होती है। मेनका से कहती है कि पृथ्वी पर रश्मि का जाल इस प्रकार फैला है जिसे देखकर स्वर्ग लोक भी ईर्ष्या करता है–

''बिछा हुआ है जाल रश्मि का, मही मग्न सोती है,
अभी मृत्ति को देख स्वर्ग को भी ईर्ष्या होती है।''[8]

तीसरे अंक में चाँदनी रात एवं तारों की शोभा नायक–नायिका के दिल को बहुत आकर्षित करती है। प्रेमालाप में लीन पुरूरवा एवं उर्वशी एक दूसरे से बातें कर रहे हैं। तभी उर्वशी चन्द्रमा की चाँदनी की ओर इशारा करती हुई कहती है– देखो, वह देखो नगपति के ऊँचे हिमाच्छादित शिखर पर तूलिका से सुधा लिम्पन कौन कर रहा है?

''ना, यों नहीं, अरे, देखों तो उधर, बड़ा कौतुक है,
नगपति के उत्तुंग, समुज्ज्वल, हिमभूषित शृंगों पर,
कौन? नई उज्जवला की तूली सी फेर रहा है।''[9]

उर्वशी की बात सुनकर पुरूरवा कहता है कि तुम सच कह रही हो। इस समय समस्त आकाश शान्ति के सौन्दर्य से परिपूर्ण है। चन्द्रमा की शुद्धता, शीतलता और उज्ज्वलता पाप रहित हृदय की भाँति चमक बिखेर रही है। इस प्रकार के मदमस्त वातावरण में मेरी पुरानी स्मृतियाँ ताजा हो रही हैं। ऐसा लग रहा है जैसे चन्द्रिका रूपी नायिका मेरे स्वप्न में भ्रमण कर रही है–

''हाँ, समस्त आकाश दीखता भरा शान्त सुषमा से,
चमक रहा चन्द्रमा शुद्ध, शीतल, निष्पाप हृदय–सा,
विस्मृतियाँ निस्तल समाधि से बाहर निकल रही हैं।
लगता है, चन्द्रिका आज सपने में घूम रही है।''[10]

इतना ही नहीं, पुरूरवा रात्रि के वातावरण और दिन के वातावरण की तुलना करता हुआ, कहता है कि दिवस का समय कोलाहल, अशान्ति एवं बेचैनी पैदा करता है। वहीं रात्रि का समय सदैव शान्ति एवं सुकून देता है। हो भी क्यों ना? रात्रि के विषय में कहावत है कि– रात सबकी माँ के समान होती है जो सबको अपने गले से लगाकर सुलाती है। संसार की जितनी भी जड़ एवं चेतन प्राणी एवं वस्तु हैं वे सभी दिन में अशान्त एवं रात में शान्त रहती है। इसीलिए तो पुरूरवा रात को शान्ति का दूत मानता है–

''तिमिर शान्ति का व्यूह, तिमिर अन्तर्मन की आभा है,
दिन में अन्तरस्थ भावों के बीज बिखर जाते हैं,
पर हम चुनकर उन्हें समंजस करते पुनः निशा में,
जब आता है अन्धकार, धरणी अशब्द होती है।''[11]

तृतीय अंक की समाप्ति के समय उर्वशी अपने अतीत के सुखों को इस प्रकार स्मरण करती है। उर्वशी गन्धमादन पर्वत पर वर्ष भर तक अभिसार करती है। जब वह पुरूरवा से अलग होकर देवलोक को जाती है तब कहती है कि वह समय कितना मादक था जब हम शिलाओं पर बैठकर पर्वत के झरनों में अपने पैर भिगोते थे। वाह रे! समय जब एक–दूसरे के गले में बाहें डालकर किसी छायादार वृक्ष के नीचे निश्चिन्त भाव से सोया करते थे। हे प्रिय! आओं बिछुड़ने से पहले जी भर प्राकृतिक झरने, लता, पुष्पों आदि से मिल लें। इस सम्पूर्ण प्राकृतिक सौन्दर्य एवं हरियाली को अपने हृदय में इस प्रकार उतार लें कि पुनः इधर आने की आवश्यकता न पड़े।

''जाने से पहले चलो, आज जी खोल मिलें,
निर्झरी, लता, फूलों की डाली–डाली से,
पी लें जी भर पर्वत पर का नीरव प्रकाश,
लें सींच हृदय झूमती हुई हरियाली से।''[12]

उर्वशी में प्रकृति सचेतन रूप में भी प्रस्तुत होती है। राजा पुरूरवा, उर्वशी से कहता है कि शिखरों के ऊपर हिमराशि फैली है और उसके नीचे झरनों का पानी अपनी मस्ती में बह रहा है। इन दानों के बीच मनमोहक वातावरण में प्रकृति धानी चोली ओढ़कर अपनी मस्ती में सोयी है। इतना ही नहीं उर्वशी उस गन्धमादन पर्वत की प्राकृति शोभा के प्रति आकर्षित होती है जो उसे सजीव जान पड़ता है। गन्धमादन के रंग–बिरंगे पुष्प और उससे उठने वाली गन्ध इतनी मादक है कि वहाँ पर रहने वाले जीव–जन्तु एवं मानव सभी उसमें अवगाहन करते हैं। यहाँ तक कि पेड़–पौधे अर्थात वहाँ का कण–कण उसके सौन्दर्य की मादकता से सजीव हो उठता है। हमारे मिलन के समय मधुर चुम्बन एवं कल कूजन को मानो ऊटवी पत्र–पत्र को श्रवण बनाकर सुना करती थी। जब हम आलिंगन करते थे उस समय डालियाँ मानो हमारा स्पर्श करना चाहती थीं। पर्वतों का राजा भी मानो स्वप्न में हमें अपनी बाँहों में भरना चाहता था। घने–घने कुंज के पुष्प भी बेचैन हो जाते थे जो सुगन्धित सांसों से हमें पीना चाहते थे –

''और गन्धमादन का वह अनमोल भुवन फूलों का!
मृग ही नहीं विटप–तृण भी कितने सजीव लगते थे!
पत्र–पत्र को श्रवण बना अटवी कैसे सुनती थी,
सूक्ष्म निनद, चुपचाप हमारे चुम्बन, कल कूंजन का!
झुक आती थीं, किस प्रकार, डालियाँ हमें छूने को,
शैलराज मानो सपने में बाँहें बढ़ा रहा हो।
किस प्रकार विचलित हो उठते थे प्रसून कूंजों के,
मानो गन्धपूर्ण सांसों से हमको पी जायेंगे।''[13]

प्रकृति की शोभा से सम्पन्न पर्वत पर प्रातःकाल उदित होते हुए सूर्य की शोभा ही निराली है। जब वह उदित होता है तो ऐसे लगता है जैसे कोई धनुर्धर अपने लाल–लाल बाएों से शैल के शिखर को बींध रहा हो। हिम से नहायी बल्लरी को देखो पुजारिन की भाँति अपने पति को फूलों का हार पहना रही है। कुंजों में जैसे किसी वृक्ष ने अभी–अभी जन्म लिया है। इसी अवसर पर समस्त प्रकृति मीठी–मीठी ध्वनि से जन्मोत्सव के गीत गाती हुई जान पड़ती है–

''चन्द्रमा चला, रजनी बीती, हो गया प्रात;
पर्वत के नीचे से प्रकाश के आसन पर
आ रहा सूर्य फेंकते बाण अपने लोहित,
बिंध गया ज्योति से, वह देखो, अरुणाभ शिखर।
हिम स्नात, सिक्त बल्लरी–पुजारिन को देखो,
पति को फूलों का नया हार पहनाती है,
कुंजों में जनमा है कल कोई वृक्ष कहीं,
वन की प्रसन्न विहगावलि सोहर गाती है।''[14]

प्रकृति का एक रूप रहस्यात्मक भी है। इसका अर्थ है कि प्रकृति में जितनी भी चीजें है– जैसे, सूर्य, चाँद, वायु, सुगन्ध, नदी, पेड़–पौधे जीव–जन्तु ये सभी किसी न किसी अज्ञात सत्ता के अनुसार कार्य करती है। इन पर मानव का नियंत्रण तो है लेकिन यह भी बताया गया है कि प्रकृति मानव से अलग नहीं बल्कि उसकी पूरक है। तृतीय अंक में पुरूरवा उर्वशी से कहता है कि धरती से आकाश तक जितनी भी क्रिया–प्रतिक्रिया होती है वह सब अज्ञात सत्ता के अनुसार ही संचालित होती हैं–

''जिसकी इच्छा का प्रसार भूतल, पाताल, गगन है,
दौड़ रहे नभ में अनन्त कन्दुक जिसकी लीला के
अगणित सविता–सोम, अपरिमित गृह, उडुमण्डल बनकर।''[15]

उर्वशी पुरूरवा से कहती है कि ईश्वर प्रकृति का शत्रु नहीं है। वह प्रकृति के कण–कण में व्याप्त है। शिखरों में मौन, झरनों में गति, मेघों में गरज एवं निशा का अन्धकार सब वही तो है। मनुष्य जो मान बैठा है कि ईश्वर आकाश में कहीं सशरीर बैठा है यह उसका भ्रम है। वह तो प्रकृति के कण–कण में समाया हुआ है। कहीं कीचड़ में, कहीं कमल में और कहीं स्वच्छ जल में अनुभव होता है–

''जिसे खोजता फिरता है तू, वह अ रूप, अनिकेतन,
किसी व्योम पर कहीं देहधर बैठा नहीं मिलेगा।
वह तो स्वयं रहा बह अपनी ही लीला धारा में,
कर्दम कहीं, कहीं पंकज, कहीं स्वच्छ जल बनकर।''[16]

इसके अतिरिक्त प्रकृति का आलंकारिक रूप में भी बहुत सुन्दर चित्रण किया गया है। प्रथम अंक से लेकर पाँचवे अंक तक कई स्थानों पर प्रकृति के विभिन्न अंगों से उपमा दी गई है और कहीं–कहीं प्रकृति पर चेतना का आरोप किया गया है। उर्वशी के सौन्दर्य चित्रण के समय प्रकृति के अंगों का उपमा आदि अलंकारों के रूप में प्रयोग किया गया है। चित्रलेखा बताती है कि राजा के लिए उर्वशी के चरण कमल, कुंकुम से है। शरीर की चमक उषाकाल की लाली जैसी नवीनता एवं ताजगी हरियाली जैसी है। इसमें उत्प्रेक्षाओं एवं अतिशयोक्ति का सुन्दर संगम दिखायी देता है–

''लाल–लाल वे चरण कमल से, कुंकम से, जावक से,
तन की रक्तिमकान्ति शुद्ध, ज्यों धुली हुई पावकसी।

तन–प्रकान्ति मुकुलित अनन्त ऊषाओं की लाली सी,
नूतनता सम्पूर्ण जगत की संचित हरियाली सी।''[17]

निपुणिका चाँदनी में वृक्षों की छाया से निकलती हुई उर्वशी की शोभा एवं लालित्य की तुलना मणि से करती हुई कहती है कि उर्वशी ऐसी लग रही है जैसे सूर्य के मुख से मणि निकल रही हो। उसे देखकर लगता है जैसे स्वयं चाँदनी ने स्वर्ण प्रतिमा का रूप धारण कर लिया हो। उसके झिलमिलाते अंग ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे कुसुमों पर हिमकण बिराजमान हों। कहना न होगा कि उर्वशी के सौन्दर्य की शोभा प्राकृतिक उपदानों से निर्मित होने के कारण दिव्य एवं भव्य दिखायी देती है। उसका शरीर उस कमल की तरह है जो अभी–अभी जल से निकल रहा हो–

''प्रकटी जब उर्वशी चाँदनी में द्रुम की छाया से
लगा सर्प के मुख से जैसे मणि बाहर निकली हो।
या कि स्वयं चाँदनी स्वर्ण प्रतिमा में आन ढली हो,
उतरी हो धर देह स्वप्न की विभा प्रमद–उपवन की,
X X X
हिमकण–सिक्त–कुसुम–सम उज्ज्वल अंग–अंग झलमल था,
मानो अभी–अभी जल से निकला उत्फुल्ल कमल था।''[18]

उर्वशी में प्रथम अंक से होकर पाँचवें अंक तक अनेक स्थानों पर प्रकृति का आलंकारिक रूप में बड़ा मनमोहक चित्र प्रस्तुत किया है। इसके अलावा शारीरिक सौन्दर्य के लिए अनेक प्राकृतिक उपमानों का बहुत समुचित

एवं संतुलित प्रयोग देखने को मिलता है– जैसे– सम्पूर्ण शरीर के चम्पक यष्टि, भाल के लिए सूर्यताप, अधरों के लिए किसलय, कपोल के लिए उषा, चुम्बन के लिए तिमिर सूल, शरीर की शीतलता के लिए चाँदनी, प्राणों के लिए सागर, मुस्कान के लिए किरण, शारीरिक बल के लिए सिंह, स्मृतियों के लिए बुलबुले एवं उर्वशी के उरोजों के लिए कुसुम कुंजों आदि का प्रयोग किया गया है।

निष्कर्ष–

अतः कहा जा सकता है कि दिनकर ने मानव व प्रकृति के सम्बन्ध को दर्शाते हुए सामाजिक महत्व को प्रमाणित करने का प्रयास किया है। प्रकृति के सौन्दर्य का ऐसा कोई कोना नहीं जहाँ दिनकर की दृष्टि न गयी हो। दिनकर की प्रकृति मानव के शारीरिक हाव–भाव से लेकर उसकी अन्तरात्मा तक प्रवेश करती है। मानव के सुख–दुःख में दुःखी व उसकी खुशी में उसके अनुकूल व्यवहार करती दिखायी देते हैं। इसका तात्पर्य है कि मानव व प्रकृति का चोली दामन का साथ है। मानव के बिना प्रकृति व प्रकृति के बिना मानव सदा अधूरा ही नहीं बल्कि निष्प्राण रह जायेगा। कवि ने इस रचना के माध्यम से मानव को प्रकृति के प्रति संवेदनाशील बने रहने की अपली की है। इसीलिए आज समस्त विश्व में जीवन की रक्षा के लिए प्रकृति के संरक्षण पर विशेष बल दिया जा रहा है। क्योंकि प्रकृति यदि तरस–नहस होती है तो मानव का अस्तित्व दूर–दूर दिखायी नहीं देगा।

संन्दर्भ –

1. रामधारी सिंह दिनकर – उर्वशी (खण्ड काव्य) अंक–3, पृ0 84–85
   (लोक भारतीय प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद–1)
2. वही – अंक–1, पृ0–20
3. वही – अंक–1, पृ0–21
4. वही – अंक–1, पृ0–23
5. वही – अंक–2, पृ0–48
6. वही – अंक–3, पृ0–101
7. वही – अंक–1, पृ0–24
8. वही – अंक–1, पृ0–24
9. वही – अंक–3, पृ0–71
10. वही – अंक–3, पृ0–72
11. वही – अंक–3, पृ0–73
12. वही – अंक–3, पृ0–101
13. वही – अंक–4, पृ0–120
14. वही – अंक–4, पृ0–101
15. वही – अंक–3, पृ0–76
16. वही – अंक–3, पृ0–85
17. वही – अंक–1, पृ0–36
18. वही – अंक–2, पृ0–40

****